भारतीय संविधान की प्रस्वावना पर छिड़ी बहस की ऐतिहासिक सत्यता

स्वतंत्र भारत की राजनीति की विडंबना को संविधान की प्रस्तावना की हालत से समझा जा सकता है। उन शब्दों की गरिमा, भावना और उनसे जुड़े कर्तव्यों के प्रति बेपरवाह रहना इस राजनीतिक विडंबना का सूचक है।

- 15 नवंबर 1948 को केटीशाह ने संविधान में 'सेक्युलर', 'फेडरल' व 'सोशलिस्ट' जोड़ने का प्रस्ताव पेश किया था। तब डॉ. बी.आर. अंबेडकर द्वारा यह प्रस्ताव यह कहते हुए खारिज कर दिया था कि, 'लोगों को किसी खास तरह की संरचना से बांधना ठीक नहीं होगा।'

ऐसा नहीं था कि भारतीय संविधान निर्माता इन शब्दों से परिचित नहीं थे। कई तो यूरोप से ही पढ़े थे, जहाँ समाजवाद को प्रबल समर्थन दिया जाता था। इन शब्दों को न जोड़ने का कारण यह था कि ये भावनाएँ पहले ही भारतीय जन मानस में रची-बसी थी।

- संविधान लागु होने के 26 वर्षों बाद 1976 में 42वें संविधान संशोधन द्वारा 'अखंडता', 'पंथनिरपेक्षता' व 'समाजवाद' शब्द जोडे गए। उस समय विपक्ष के नेता जेल में थे, प्रेस पर सेंसरशिप लगी हुई थी। पूरे देश में आपातकाल लगा हुआ था।

लेकिन 1977 में जब मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता दल के नेतृत्व में गठबंधन की सरकार बनी, तब 1979 में 44वां संविधान संशोधन किया गया, जिसमें आपातकाल के समय के अनेक संशोधनों को रद्द कर दिया गया। तो फिर प्रस्तावना में बदलाव को दूसरी सरकार द्वारा भी क्यों स्वीकार कर लिया गया।

इसके लिए कुछ बिंदुओं पर विचार करने की आवश्यकता है -

- देश-विदेश के संविधानविदों ने प्रस्तावना को महत्वपूर्ण माना था। प्रसिद्ध ब्रिटिश राजनीतिशास्त्री सर अर्नेस्ट बार्कर ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ सोशल एण्ड पॉलिटिकल थ्यौरी' में प्रस्तावना को यह कहते हुए शामिल किया कि उसमें वह सब कुछ समाहित है, जो वे अपनी पुस्तक की भूमिका के लिए कह सकते थे।

- भारत में राजनीतिशास्त्र और कानून की कक्षाओं में प्रस्तावना को संविधान की 'आत्मा', 'मूलाधार' आदि कहा जाता है।

- 1960 में सुप्रीम कोर्ट ने प्रस्तावना को निर्देशक सूत्र या मानक स्केल बताया है।

- 1973 में केशवानंद भारती मामले में प्रस्तावना को संविधान का मूल ढ़ांचा कहा गया था।

संविधान की प्रस्तावना में परिवर्तन के परिणाम -

- इससे संविधान का चरित्र बदलने का काम आरंभ हुआ।

- भारतीय राजनीति में एक हिंदु विरोधी मानसिकता पनपी, जो संपूर्ण राजनैतिक-शैक्षिक जीवन को बुरी तरह डसती गई।

- हिंदुओं को दूसरे दर्जे का नागरिक बना दिया गया तथा अल्पसंख्यकों द्वारा वोट बैंक की राजनीति की गई। गैर-हिंदुओं को सभी दलों द्वारा विशेष सुविधा, विशेष अधिकार देना मौन रूप में स्वीकार किया गया।

- जनता के साथ विश्वासघात किया गया। पर इसकी गति इतनी कम थी कि जनता को पता भी न चले।

इस बहस में भी सभी दल अपनी-अपनी वोट बैंक की राजनीति की रोटी सेकेंगे और फिर सब कुछ शांत हो जाएगा, क्योंकि अल्पसंख्कवादी कारोबार में सभी राजनीतिक दल आकंठ डूबे हुए हैं।

*****